नास्तिकता में आस्तिकता का बीज

(प्रश्नोत्तरी - भाग-२)

प्रस्तावना

सन् 1997 की बात है जब मेरे पास दो मित्रों का आगमन हुआ। उस समय की परिस्थितियां ऐसी थी कि हमारे पास बहुत से व्यक्ति जो मेरे सतगुरू के सत्संगी थे, आते रहते थे। कभी-कभी तो 15-20 लोगों का ग्रुप आता और मुझसे कहता कि इस शब्द का अर्थ करो। जब मैं सही अर्थ कर देता तो वे संतुष्ट हो जाते और कहते कि इस लड़के के अन्दर सतगुरू की मौज आई हुई है। कभी-कभी 30 से 50 भाई व बहनों का ग्रुप आ जाता और अपनी आध्यात्मिक प्यास को बुझाने का प्रयत्न करता। मेरे सतगुरू की कुछ ऐसी दया थी कि जितने भी आदमी आते वे सभी संतुष्ट होकर जाते। उस दौरान कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि कुछ व्यक्ति जो अपने आपको अधिक ज्ञानी समझते थे, उन्होंने मुझे अपशब्द भी कहे लेकिन सतगुरू की दया से उन सब ने जाते हुए अपनी बात पर खेद प्रकट किया। यह सिलसिला पूरे साल चलता रहा।

इसका कारण था मेरे सतगुरू राधास्वामी दयाल परम् संत ताराचंद जी महाराज का अचानक बिना कुछ कहे इस धरा से विलीन हो जाना। मेरे सतगुरू के धाम में लगभग बीस दिन तक ऐसी परिस्थिति रही कि सतगुरू ने अन्न व जल का त्याग कर दिया था और मौन धारण कर लिया था। उस दौरान कोई बिरले व्यक्ति को ही उनसे मिलने की अनुमति थी। ऐसा रहते हुए सत्संगियों में अनेक तरह की भ्रांतियां फैलने लगी। इसी दौरान 3 जनवरी 1997 को मेरे सतगुरू ज्योतिज्योत समा गए। अन्तिम संस्कार के वक्त जब अग्नि के अन्दर से उन्होंने हाथ उठाकर वहां खड़े लोगों को कुछ दर्शाना चाहा तो इन भ्रांतियों को और अधिक बल मिला। उस वक्त बहुत से ऐसे व्यक्ति जो सतगुरू से बहुत अधिक प्यार करते थे वे सतगुरू की मौज को ढूंढने के लिए इधर-उधर भटक रहे थे। इसी सिलसिले में वे मेरे पास आते थे।

मेरे पास उनके आने के कई कारण थे एक तो यह कि मेरे सतगुरू हमारे साथ बहुत अधिक प्यार करते थे और बार-बार संगत के बीच में कहते थे कि बिमल और प्रकाश का ध्यान सारी संगत में अव्वल बनता है। कभी किसी को यह कहते कि बिमल को कहना कि वह किसी को गल्त न बोले क्योंकि वह जो कहेगी वह बात पार हो जाएगी। कभी मुझे कहते कि मेरी यह इच्छा है कि बिमल गुरू की पदवी धारण करे। कई बार सत्संगियों के बीच में

कहते कि मेरे जाने के बाद सत्संग का काम तुम्हें ही सम्भालना है। उन्होंने एक बार हमें कहा कि भिवानी में एक प्लाट ले लो। आश्रम के बिल्कुल साथ प्लाट लिया, फिर कहने लगे कि अब इसे बनाओ। मकान बनने के बाद हमने प्रार्थना की कि इसे सेवा के रूप में स्वीकार करें। महाराज जी ने इसके लिए मकान की कीमत देकर ही आश्रम में लेने की शर्त लगाई। लागत मूल्य पर उस मकान को आश्रम में ले लिया गया और उसकी रजिस्ट्री महाराज जी के नाम करवाई गई। महाराज जी जब भी आश्रम में आते तो उसी मकान में आराम करते और वहीं पर सत्संग के बाद नामदान देते। यह देखकर हमारी खुशी का ठिकाना न रहता। एक दिन महाराज जी कहने लगे कि आश्रम में जो कमरे बन रहे हैं इनमें से दो कमरे तुम्हें दिए जाएंगे और जब भी चाहो उनमें आकर रहना। उसके बाद कहने लगे कि एक प्लाट और ले लो। हम दोनों भाइयों ने मिलकर रोहतक रोड़ पर 500 गज का प्लाट लिया जो बाद में नए बस स्टैंड के सामने आ गया।

एक बार जब मैं बीमार हुआ तो मुझे भिवानी बुलाया और वहां के एक प्राइवेट हस्पताल में दाखिल करवाया और स्वयं भी मुझे देखने के लिए हस्पताल में आए और डाक्टर जो उनके शिष्य थे कहा कि इसे कुछ भी नहीं होना चाहिए। उसके बाद जब बिमल का ध्यान ऐसी अवस्था में आ गया कि वह हिल नहीं पाती थी। ध्यान करती हुई इतनी गहराई में चली जाती थी कि वापिस नहीं आना चाहती थी। शरीर जब गिरने लगा तो डाक्टरों से दवाई ली लेकिन कोई आराम नहीं हुआ। तब हम उनके पास गए तो उन्होंने बताया कि यह कोई बीमारी नहीं है, यह ध्यान की वजह से है। मालिक ने बिमल को ध्यान नहीं करने का आदेश दिया और कहा कि अपने भाई की शादी में जाओ और अपने ध्यान को बांटो। गीत गाओ, बच्चों से खेलो, कुछ भी करो लेकिन ध्यान नहीं करना क्योंकि ध्यान में कभी ऐसा हो जाएगा कि इसकी आत्मा का वापिस आने को मन नहीं करेगा और यह चोला छोड़ जाएगी।

फिर उन्होंने हमें एक बच्चे के लिए आदेश दिया। हमने उन्हें इस आदेश को वापिस लेने की प्रार्थना कि तो उन्होंने कहा कि सतगुरू की बात में कोई रहस्य छिया होता है जिसका तुम्हें बाद में पता चलेगा। जिस दिन लड़के का जन्म हुआ उससे पहले दिन बिमल की मां और बहन महाराज जी के दर्शन करने गई तो उनसे कहने लगे कि तुम्हें तो आज बिमल के पास होना चाहिए था। अगले दिन सुबह जब मैं उनके पास गया और उन्हें यह खबर सुनाई तो एक दम इतने खुश हुए कि आसन से खड़े हुए और मुझे अपने सीने से लगा लिया।

एक बार नरवाना में सत्संग कर रहे थे, हम भी वहां बैठे हुए थे। हमारी तरफ ईशारा करके कहने लगे कि यहां सफेद कपड़ों में ऐसे-ऐसे आदमी आए हुए हैं कि यहां का एक ग्रास भोजन भी ले लेंगे तो तुम्हारा उद्धार हो जाएगा। जब ऐसे वचन उनके मुख से सुनते तो हमारी आंखों से अश्रुधारा फूट जाती और हम मन ही मन कहते कि हे सतगुरू ! हम तो नीच, अधम और नाकार हैं, हम इतने योग्य नहीं कि आप इतनी ऊंची-ऊंची बातें कहो। जब हम कभी-कभी उन्हें ऐसा कहते तो वे गुस्से में आकर कहते कि अपने आपको कभी भी कमजोर नहीं समझना। तुम शहनशाह के पुत्र हो और शहनशाहों के शहनशाह हो। इससे ज्यादा हम उनके सामने जुबान नहीं खोल पाते थे। हृदय से हृदय का संवाद होता था, जुबान और मन मोहरबंद हो जाते थे।

ध्यान में उनकी दया इतनी बरसती थी जिसे देखकर ध्यान में विरह के आंसू निकलने लगते थे और घंटों ध्यान करते रहते थे। हमें कहते थे कि चिट्ठी लिखते रहना। हम भी ध्यान की सारी अवस्था का वर्णन उन्हें चिट्ठियों में लिखते रहते थे। इनमें से कुछ पत्र 'रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश' पुस्तक में प्रकाशित कर दिए गए हैं।

जब हम सन् 1986 में कार्तिक की पूर्णमासी के सत्संग में सबसे पहले उनके पास गए तो वे सत्संग करते हुए बिमल के बारे में कहने लगे कि यहां सफेद कपड़ों में मेरी एक बहन मीरा बनकर आई हुई है, अगर वह इसी लिबास में पार हो गई है तो उसकी एक सौ एक पीढ़ियां तर जाएंगी। उसके बाद नामदान लेने के लगभग एक महीने के बाद मैं गया तो कहने लगे कि मैं तुमसे नहीं मिलता क्योंकि तुम चोर हो। मैं यह सुनकर सहम गया और दूर खड़ा रहा। जब उन्होंने मेरी हालत देखी तो पास बुलाकर पूछा कि क्या बात है ? मैं जोर-जोर से रोने लगा तो उन्होंने मुझे अपने सीने से लगा लिया और कहने लगे कि मेरे सतगुरू मुझे पागल कहते थे। उन्होंने पागल का अर्थ बताया कि पागल वह है जिसे गल (रहस्य) पा गई है। तुम चोर हो। इसका मतलब है कि तुम दिन में दूसरे लोगों की तरह काम करते हो और रात को राम नाम की चोरी करते हो। जब मैं यह सुनकर खुश हुआ तो मेरे मुंह पर प्यार से थप्पड़ मारते हुए कहा कि कभी घबराना नहीं, मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।

जब 10 जनवरी 1987 को (नाम लेने के दो महीने बाद) हम उनके पास गए तो वे मौन पर थे। उन्होंने हमें अलग से बुलाया। मैंने उन्हें बताया कि पिता जी ! ध्यान में लाल प्रकाश दिखता है और घंटा सुनाई देता है तो उन्होंने मेरी आंखों में देखा और स्लेट पर लिखा

कि तूं प्रकाश में रहता है इसलिए तेरा नाम बदल दिया है। तेरा नाम प्रकाशानंद है। उसके बाद वे मुझे प्रकाश कहने लगे और हम दोनों को बिमल प्रकाश कहकर पुकारने लगे। सत्संगी भी हमें बिमल प्रकाश कहने लगे। एक बार एक सत्संगी महाराज जी के सामने शिकायत करने लगा कि इन्होंने अपने नाम की आरती क्यों बना ली है। महाराज जी उसे कहने लगे कि बिमल प्रकाश की आरती इन्होंने नहीं बनाई है बल्कि यह तो स्वयं स्वामी जी महाराज ने आज से सवा सौ साल पहले बनाई थी।

इस तरह की अनेक बातें भी जिन्हें देखकर संगत को लगता था कि बिमल प्रकाश महाराज जी के सबसे निकट और प्यारे हैं इसलिए सत्संगी जो मालिक के प्यारे थे और उनके अंतिम समय की घटनाओं से आहत थे वे उनके चोला छोड़ने के बाद अपने प्रश्नों के हल जानने के लिए और मालिक की विदाई के समय उपजी शंकाओं के निवारण के लिए हमारे पास आने लगे और सत्संग शुरू करने की जिद करने लगे।

दूसरी तरफ मालिक ध्यान में प्रगट होने लगे और बेधड़क होकर सत्संग आरम्भ करने के लिए आदेश देने लगे। इससे हमारे अन्दर अनेक शंकाओं ने जन्म लिया लेकिन उन्होंने उन सबका तरतीब से जवाब दिया। फिर भी हमने कहा कि इस प्रकार के दर्शन राधास्वामी पंथ की शिक्षा से मेल नहीं खाते हैं तो उन्होंने कहा कि यह मेरी अन्तिम इच्छा थी और सतगुरू की इच्छा पूरी न हो यह सम्भव नहीं है। फिर भी हमने उनसे कहा कि हमारे वश का कुछ भी नहीं है तो वे कहने लगे कि यह इच्छा स्वत: ही फलित होगी क्योंकि यह मेरी नहीं बल्कि यह योजना तो स्वामी जी महाराज के आने से भी पहले सृष्टि के आदि से बनी हुई है। यह मौज का हुकम है। जब तुम खाओगे, पीओगे और सांस लोगे तो यह मौज की सुगंध तुम्हारे अन्दर समाती जाएगी। इससे बच पाना तुम्हारे वश की बात नहीं है। मैं तो केवल इसलिए साकार रूप धारण करके आ गया हूं कि तुम मुझसे बहुत प्रेम करते हो और मेरी इस प्रकार की विदाई को तुम सहन कर सको। सतगुरू के साथ हुए ये प्रश्न उत्तर 'रूहानी पत्र व सतगुरू आदेश' में पहले ही छाप दिए गए हैं।

इसके अतिरिक्त सतगुरू के जाने के बाद एक बात और हवा में उछली कि मालिक ने अंतिम समय में अपनी वसीहत लिखी थी और सत्संग की जिम्मेदारी के लिए 'प्रकाश' का नाम लिखा था। हिसार में एक 20-22 साल का अविवाहित लड़का थ जिसका नाम प्रकाश था। उसने मालिक से नाम लिया था। जब उसे इस बात का पता लगा तो वह घंटों ध्यान में बैठने

लगा। कुछ सत्संगी उसे अपने साथ लेकर घूमने लगे। इस दौरान वह मेरे पास भी आया। लेकिन जब संगत को यह मालूम पड़ा कि सतगुरू मुझे भी प्रकाश कहते थे तो वे मेरे पास आने लगे। दुर्भाग्यवश वह लड़का जिसका नाम प्रकाश था उसी दौरान चोला छोड़कर मालिक को प्यारा हो गया।

इन सारी घटनाओं के मध्य मेरे पास काफी लोग आए और सतगुरू धाम में जाकर ये सारी बातें बताने के लिए कहते रहे लेकिन हमें कहीं भी जाने की जरूरत महसूस नहीं हुई क्योंकि हमारा तो एक ही विश्वास था कियदि यहां पर मौज की मंजूरी है तो उसे संसार की कोई ताकत नहीं रोक सकती है। उसके प्रचार और प्रसार के लिए किसी के पास जाने की जरूरत नहीं है। मौज किसी की मोहताज नहीं होती। मौज अपना रास्ता स्वयं ढूंढ़ती है। हम सभी उसके यंत्र हैं। हम सबको उसके हुकम का पालन करना ही पड़ेगा।

इसी दौरान मेरे पास वे दो मित्र आए। उस समय मैं विश्वविद्यालय के फैकल्टी हाऊस में ठहरा हुआ था। उनमें से एक प्रोफेसर था और दूसरा पेशे से वकील। मैं उस प्रोफेसर को बहुत सम्मान देता हूं क्योंकि वह मेरे बड़े भाई का सहपाठी व मित्र रहा है इसलिए उसे भी मैं बड़े भाई का दर्जा देता हूं। प्रोफेसर साहब एक दिन मुझे बेसिक साईंस कॉलेज में मिले और कहने लगे कि मेरे एक वकील मित्र हैं, आपके सत्संगी भाई हैं और आपके बारे में मुझसे कई बार पूछ चुके हैं। आपसे मिलने के लिए उत्सुक हैं। मैंने उन्हें फैकल्टी हाऊस में आ जाने के लिए कहा।

इसके बाद जब प्रोफेसर साहब से बातें हुई तो वे कहने लगे कि मैं तो नास्तिक हूं, मैं आपके अध्यात्म को नहीं मानता और इस जीवन में तो कभी नहीं मानूंगा। मैंने उनसे कहा कि आप मुझे दस मिनट का समय दीजिए मैं आपको अध्यात्म के बारे में सोचने पर मजबूर कर दूंगा। वे कहने लगे कि यह सम्भव नहीं हैं, क्यों अपना समय बर्बाद करते हो। मैंने उनसे कहा कि यदि मैं आपसे कहूं कि अध्यात्म से संसार की हर दौलत मिलती है, क्या तब भी आप अध्यात्मक से दूर भागेंगे। उन्होंने पूछा–क्या यह सम्भव है ? मैंने कहा – बिल्कुल सम्भव हैं। वे उस समय तो चले गए लेकिन जब शाम को अपने वकील मित्र के साथ आए तो उत्सुक मालूम पड़े। आते ही वकील साहब से परिचय हुआ और बातचीत हुई। चर्चा शुरू होते ही प्रोफेसर साहब कहने लगे कि पहले अपनी दोपहर वाली बात सिद्ध करके दिखाओ फिर आगे बढ़ना। मुझे मालूम था कि वे यही सवाल करेंगे। मैंने उनसे कहा कि स्थूल रूप में आप अब

मुझसे मिलने आए है लेकिन सूक्ष्म रूप से आज रात स्वप्न में आप मेरे पास पहुंच चुके हैं। वास्तव में यह स्वप्न मुझे दिखाई दिया था।

मैंने कहा कि एक बात का सच्चाई से जवाब देना। उन्होंने कहा – बोलो। मैंने कहा – क्या कुदरत अंधी है कि आपको तो प्रोफेसर बना दिया और दूसरा व्यक्ति गरीबी में वक्त काट रहा है। इसका कोई कारण तो होगा। उसने कहा – चांस की बात है। मैंने कहा चांस नहीं संस्कार की बात है। जहां भी आपकी तरह अफसर हैं या बड़े ओहदों पर बैठे हुए लोग हैं या अपने-अपने क्षेत्र के माने हुए व्यक्ति हैं उन सबका पारिवारिक आधार क्या है ? क्या कभी इस बारे में सोचा है ? आप अपने परिवार के बारे में बताइये कि आपके पिता या दादा के कैसे विचार थे। उन्होंने कहा कि हमारा परिवार पक्का आर्य समाजी था। मैंने कहा कि आप अध्यात्मक की संतान हैं इसलिए विशालता से संस्कार लेकर आपका जन्म हुआ है। कुदरत के खाते में पाई-पाई का हिसाब है, कोई गदर नहीं है। उन्होंने फिर प्रश्न किया – भगत सिंह भी तो नास्तिक थे, वे महान कैसे बने ? मैंने कहा कि भगत सिंह का पारिवारिक आधार क्या था? शुद्ध आध्यात्मिक और आर्य समाज की पृष्ठभूमि से निकलकर आए थे। भगत सिंह का तो नाम ही बताता है कि उनके माता-पिता आध्यात्मिक थे। प्रोफेसर साहब ने फिर प्रश्न किया – नाम तो कुछ भी रख देते हैं जैसे माटी, धापो, बहुतेरी आदि। मैंने कहा कि माटी नाम तभी रखते हैं जब बच्चा मिट्टी जैसा सुस्त हो और धापों व बहुतेरी नाम तब रखते हैं जब मां-बाप और लड़की नहीं चाहते हैं। मां-बाप के विचार और बच्चो का स्वभाव इसका कारण होते हैं। व्यक्ति के नाम से पता चल जाता है कि वह किस पारिवारिक पृष्ठभूमि से आया है। इस देश के जितने भी बड़े नास्तिक हैं वे सभी अध्यात्म की संतान हैं। उन सभी के नाम परमात्मा के नाम पर हैं। उन्होंने जब विचार कर देखा तो उन्हें मेरी बातों में सच्चाई नजर आई। मैंने उन्हें कहा कि आजकल तो नहीं लेकिन पुराने वक्त में व्यक्ति का नाम मां-बाप के विचारों को दर्शाता था।

इस प्रकार कुछ समय तक प्रोफेसर और वकील साहब से मेरी बातें होती रही, प्रश्न-उत्तर चलते रहे। उसके बाद जब वे प्रोफेसर साहब मुझे मिले तो कहने लगे कि अब मैं बदल गया हूं। जब समय मिलता है तब आध्यात्मिक पुस्तकें पढ़ता हूं और संतों की संगत भी करता हूँ।

इन्हीं प्रश्नों को आधार बनाकर इस पुस्तक की रचना की गई है जो सम्भवत: नास्तिक व्यक्तियों और सच्चाई के जिज्ञासुओं के लिए मद्दगार साबित होगी। मेरी सतगुरू से प्रार्थना है कि जो भी व्यक्ति इस पुस्तक का सच्चे मन और रूचि से अध्ययन करे उसे मानसिक तथा आध्यात्मिक लाभ हो और धर्म व अध्यात्म व्यवहार में उतरें।

राधास्वामी

बिमल प्रकाश

प्रश्न – अध्यात्म क्या है ?

उत्तर – आत्मा अर्थात स्वयं और परमात्मा अर्थात सृष्टि का भेद जानने का प्रयत्न करना अध्यात्म है। स्वयं का रिश्ता इस सृष्टि या बाहरी संसार के साथ क्या है, इसका भेद जानना अध्यात्म है।

प्रश्न – धर्म क्या है ?

उत्तर – अध्यात्म की आंतरिक तह तक जाना धर्म है। आत्मिक धर्म सबके लिए एक है। बाहरी धर्म भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। संसार के जितने भी धर्म हैं ये सभी मन की पैदायश हैं। इनका आत्मिक धर्म से कोई वास्ता नहीं है क्योंकि आत्मिक धर्म का आरम्भ ही वहां से होता है जहां पर मन की सारी हदें, संसार का व्यवहार तथा सारे रिश्ते-नाते मनुष्य के लिए विशेष नहीं रहते हैं। रिश्ते-नातों में व्यवहार करना केवल जीवन जीने का एक जरिया बन जाता है।

प्रश्न – धार्मिक कौन है ?

उत्तर – जिसने सारी हदों को पार कर लिया है और स्वयं के अन्दर स्थिर हो गया है। स्वयं के विवेक और अन्तर्ज्ञान के आधार पर फैसले करता है। किसी भीड़ के अन्दर नहीं बहता है। कोई सम्प्रदाय, सांसारिक धर्म, शास्त्र उसके लिए सीढ़ी का काम कर सकते हैं लेकिन मंजिल नहीं बन सकते हैं क्योंकि मंजिल पर जाने के बाद व्यक्ति सीढ़ी को उठाकर नहीं चलता है। सीढ़ी ऐसे व्यक्ति के लिए भार बन जाती है। धार्मिक व्यक्ति हमेशा स्वयं के स्वार्थ को पीछे रखता है, दूसरों की भलाई और आसपास के वातावरण की रक्षा करना ऐसे व्यक्ति का कर्त्तव्य बन जाता है।

प्रश्न – क्या शास्त्र की पूजा करना धर्म की प्राप्ति में सहायता करता है ?

उत्तर – आत्मिक मार्ग खोज का मार्ग है जो व्यक्ति को भिन्न-भिन्न जगहों व व्यक्तियों के पास खींचकर ले जाता है। पहले बनाई गई कोई भी धारणा या मन के संस्कार खोज के मार्ग में रूकावट बनते हैं। व्यक्ति आत्मा की भूख के आधार पर आगे बढ़ता है जिसमें न जाने कितनी दीवारें गिरती हैं और कितनी हदों को पार करना पड़ता है। इसलिए आत्मिक खोजी के मार्ग में संसार ने हमेशा रूकावटें पैदा की हैं लेकिन ऐसे व्यक्ति के लिए ये सारी दीवारें छोटी पड़ जाती हैं। शास्त्र की एक सीमा होती है वह सीमाहीन का भेद कैसे दे सकता हैं ? शास्त्र की वाणी मानसिक संसार की देन है तथा मन के स्तर में आत्मा का या अनंत का भेद कैसे जाना जा सकता है? वह सम्भव नहीं है।

प्रश्न – कहते हैं कि कुछ शास्त्रें की रचना परमात्मा ने स्वयं की है ?

उत्तर – कुछ लोगों का मत है कि वेदों की रचना ब्रह्मा ने स्वयं की है। कुरान की आयतें भी जैबराइल फरिश्ते ने हजरत मुहम्मद के माध्यम से लिपिबद्ध करवाई। बाईबल को भी ईश्वर का वाक्य कहा जाता है। यह इसलिए है कि व्यक्ति की इच्छा हमेशा से ईश्वर को व्यक्ति के रूप में देखने की रही है। मनुष्य का दिमाग वहीं तक जा सकता है जहां तक वह सोच सकता है और उसके लिए मनुष्य की उच्चतम क्षमता अतिमानव हो सकती है। इसलिए उसने ईश्वर या खुदा की एक श्रेष्ठतम तस्वीर अपने मस्तिष्क में बनाई उसकी लगातार, एक मुश्त होकर पूजा व आराधना की। वही तस्वीर उसके अवचेतन में उतर गई और सपनों में प्रकट होने लगी। जो भी आदेश और दिशानिर्देशन उस रूप ने दिए वे आगे आने वाली प्रणालियों के लिए ईश्वर का आदेश बन गए। वहीं से ऐसे शास्त्रों की रचना हुई। ये शास्त्र मनुष्य की उच्चतम कल्पना शक्ति का परिणाम हैं। मनुष्य की मानसिक शक्ति की एक व्याख्या हैं। शास्त्र मनुष्य के द्वारा खींची गई केवल एक साकार लकीर है जो निराकार का भेद नहीं खोल सकती है।

प्रश्न – क्या स्वप्न में किसी फरिश्ते या अवतार का दर्शन ईश्वर का दर्शन नहीं है ?

उत्तर – स्वप्न या ध्यान में किसी महामानव, देवता, पैंगबर या अवतार का दर्शन व्यक्ति के मन की ऊंची अवस्था को दर्शाता है उसकी भक्ति को शक्ति देता है और उसे आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करता है लेकिन यह दर्शन भी एक साकार दर्शन है जो मन के पवित्र ख्याल का परिणाम है। यह मंजिल नहीं है, केवल आत्मिक धर्म की शुरूआत है। क्या किसी हिन्दू को हजरत मुहम्मद या ईसा मसीह के दर्शन होते हैं? क्या किसी ईसाई या मुसलमान को राम और कृष्ण के दर्शन होते है ? यह दर्शन केवल एक मानसिक संस्कार है जिस पर लगातार ध्यान करने से वह मनवांछित गुण लेकर अंतर में प्रकट होने लगता है।

प्रश्न – क्या पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ, तीर्थ-व्रत मनुष्य की सहायता करते हैं ?

उत्तर – अवश्य करते हैं लेकिन एक हद तक। ये सब परमात्मा तक पहुंचने के स्थूल साधन हैं। ये सब और शास्त्रों का अध्ययन की बाहरमुखी साधन हैं। आत्मा का भेद जानने के लिए अन्तर्मुखी होना जरूरी है क्योंकि वस्तु अन्तर में खोई हुई है और अन्दर से ही उसकी खोज की जा सकती है। बाहरी साधनों से तो केवल मनुष्य के अन्दर श्रद्धा और भक्ति का जनम होता है जो उसे सुख और सहजता की तरफ ले जाते हैं। जब उसे आनन्द की अनुभूति होने लगती है तो उस सुख को पाने के लिए उसकी बाहरी आंखें स्वत: ही बन्द होने लगती हैं और तीसरी

आंख खुल जाती है जो उसे आत्मिक नूर से नहला देती है। परन्तु विड़म्बना यह है कि व्यक्ति इन बाहरी कर्मकाण्डों में ही सारा जीवन उलझा रहता है जो धीरे-धीरे आडम्बर बन जाते हैं और व्यक्ति मृत होकर इन्हें अपनी जीवनचर्या का एक अंग बना लेता हैं। ऐसा धर्म कभी भी आत्मनिष्ठ धर्म नहीं बन सकता हैं ऐसे लोग या भक्त ही धार्मिक कट्टरपन को बढ़ावा देते हैं। यह आडम्बर युक्त धर्म आत्मिक धर्म का दुश्मन बन जाता है। बहुत से गुरू ऐसे लोगों की ही धार्मिक भावनाओं से खिलवाड़ करते हैं और अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं जिससे समाज में नफरत फैलती है।

प्रश्न - अन्तर में गुरू का दर्शन क्या परमात्मा का दर्शन नहीं है ?

उत्तर - जब भक्ति मजबूत होने लगती है तो भक्त को अपने अंतर में गुरू या इष्ट के दर्शन होने लगते हैं। यह एक शुभ संकेत है लेकिन साधना की दरम्यानी अवस्था है, पूर्ण प्राप्ति नहीं क्योंकि यह भी एक साकार दर्शन है और जितनी भी साकार भक्ति है वह मूल रूप से अहंकार की पूजा है, जो भी साकार का दर्शन है वह सब अहंकार का दर्शन है। साकार का अर्थ है आकार सहित और जो भी वस्तु आकार में आ गई है उसकी एक सीमा बंध गई है और साकार का दर्शन या साकार की प्राप्ति कभी भी सीमाविहीन व निराकार का अनुभव नहीं हो सकता है।

प्रश्न - यदि गुरू का दर्शन भी अधूरी प्राप्ति है तो फिर गुरू धारण क्यों किया जाता है ?

उत्तर - खोज करने का कोई मार्ग हो उसमें मार्गदर्शक की आवश्यकता पड़ती ही है। जब खोज अनामी की हो, अज्ञात की हो तो मार्ग की कौन सी जरूरत सामने आ जाए कुछ पता नहीं चलता। आत्मा को पाने की प्यास और प्रीतम से वियोग की तड़फ व्यक्ति को जीवन की कौन सी अनजान घाटियों में ले जाए इसका कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता है। अज्ञात के अन्दर यदि छलांग लगाने का दाव खेला है तो भेदी का साथ होना अति आवश्यक है। आत्मा की खोज कोई गणित का सवाल नहीं है जिसमें निश्चित फार्मूले काम करते है और निश्चित परिणाम होते हैं। फिर भी गणित का ज्ञान बिना गुरू के सम्भव नहीं हो पाता है। अध्यात्म तो नित नयी उर्जा का शोधन है और उस उर्जा का व्यवहार भी अनिश्चिताओं से परिपूर्ण है। जीवन की कौन सी मन व हृदय की वासना की धारा किस समय उभार पर आ जाए और मार्ग रोक कर खड़ी हो जाए यह जान पाना कठिन है। पूर्ण गुरू जो रास्ते का भेदी है वह इन सभी अनिश्चितताओं के प्रति सजग रहता हुआ अपने प्यारे मुरीद की रक्षा करता है और उचित

मार्गदर्शन करता है। उसकी हर शंका का समाधान करता है, हौंसले को बुलन्द रखता है और मार्ग पर अटल रखने में मदद करता है।

प्रश्न – क्या देही गुरू पूरा आत्मिक अनुभव करवा सकता है ?

उत्तर – गुरू केवल एक द्वार है जो परमात्मा के साम्राज्य में दाखिला करवा देता है। व्यक्ति के मन का बुझा हुआ दीपक जला देता है, उसमें हौसले का तेल डाल देता है तथा नाम की बाती से उसे रोशन कर देता है। एक बार जब विश्वास का दीपक जलता है तो व्यक्ति के अन्दर श्रद्धा और भक्ति की मशाल जलने लगती है जो अन्तर में नूर बनकर शरीर, प्राण, बुद्धि को रोशनी से भर देती है। लेकिन जब तक कोई भी शंका का मैल आत्मा के ऊपर रहता है तब तक आत्मिक नूर और अनहदनाद प्रकट नहीं होता है। गुरू इसी मैल को उतारता है, फिर पर्दों में (कोष) में छिपी हुई आत्मा कुण्डलीनी शक्ति बनकर सूदर्शन चक्र की तरह अंधकार का पान करने लगती है।

प्रश्न – कुण्डलीनी शक्ति का जागरण क्या है ?

उत्तर – परमात्मा की शक्ति जब रचना करती है तो वह कुंडल (मण्डल) रूप में चक्कर बनाती हुई उतरती है और जगह-जगह पर उर्जा की आवश्यकतानुसार केन्द्र स्थापित करती हुई चलती है। यही कारण है कि हमारे शरीर में सात जगहों पर ऐसे केन्द्र हैं जिन्हें कुण्डलीनी शक्ति के सात चक्र कहा जाता है। इन चक्रों की शक्ति को जागृत करना ही कुण्डलीनी जागरण कहा जाता है। राधास्वामी योग में कुण्डलीनी जागरण के बाद बहुत लम्बा मार्ग बाकी रह जाता है लेकिन दूसरे लगभग सभी मार्गों में इसे ही अन्तिम मंजिल मान लिया जाता है।

प्रश्न – पूर्ण गुरू का लक्षण क्या है ?

उत्तर – पूर्ण गुरू शब्द (अनहद नाद) का भेद देता है। वह सुरत (आत्मा) की चढ़ाई की अठारह मंजिलें, ऊपर आने वाली ज्योति का स्वरूप और हर मंजिल पर होने वाली शब्द-धुन का खोलकर वर्णन करता है। ऐसा गुरू व्यक्ति को बाहरी कर्मकाण्डों व आडम्बरों से छुटकारा दिलाकर उसे खुद का मालिक बनाता है। हर प्रकार की गुलामी की जंजीरों को तोड़ता है तथा व्यक्ति को यह अनुभव करवाता है कि वह कुदरत का सबसे शक्तिशाली व श्रेष्ठ तोहफा है। कोई भी देवी-देवता या प्राकृतिक शक्ति उससे श्रेष्ठ नहीं है जो उसके भाग्य को बदल दे या उसके कार्य को बिगाड़ दे। व्यक्ति एंकाग्र, अंखडित और भयमुक्त होता चला जाता है जिससे उसका आन्तरिक और सांसारिक जीवन भी सुधरता चला जाता है तथा हर तरह की बरकत

उसके जीवन में स्वत: ही हाजिर होने लगती है। प्रकृति की सभी ताकतें उसकी इच्छा की पूर्ति में सहायक हो जाती हैं। वह भी प्रकृति के किसी भी कार्य में अपनी इच्छा से बाधा नहीं डालता है।

प्रश्न – कहते है कि गुरू सूली का दर्द सूल में बदल देता है, वह कैसे ?

उत्तर – एक भकत के अनुसार गुरू धारण करने से व्यक्ति एक से ग्यारह हो जाता है बल्कि एक ऐसा रिश्ता जन्म लेता है जो भक्त की हर अनहोनी घटना से रक्षा करता है। व्यक्ति की सारी विपदा गुरू अपने सिर ओढ़ लेता है, ऐसा भक्त का दृढ़ विचार बन जाता है। यही दृढ़ विचार व्यक्ति के अन्दर अखण्ड विश्वास को जन्म देता है, उसके नजरिए को विशाल बना देता है, उसे भयमुक्त करता चला जाता है। ऐसे भक्त के सामने कोई भी कठिनाई आ जाए वह उसका सामना बहादुरी के साथ करता है। वह कठिनाई से घबराता नहीं है, बल्कि दूसरों की सहायता करने के लिए हमेशा तैयार रहता है। ऐसे ही व्यक्ति को गुरूमुख कहा जाता है अर्थात वह हर उपलब्धि को या हर कठिनाई को गुरू के अर्पण करता चलता हैं। कहने का अर्थ यह है कि बड़े से बड़ा दर्द भी उसके लिए गौण हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसकी सारी शक्ति इतनी एकाग्र बनी रहती है कि कोई भी तामसिक शक्ति उसकी तरफ आने से डरती है क्योंकि तामसिक शक्ति के आक्रमण के लिए एक आवश्यकता होती है कि वह सबसे पहले व्यक्ति को विभाजित करती है जिससे उसका विश्वास स्वयं के प्रति कमजोर हो जाताहै और एक कमजोर व्यक्ति चलती–चलती विपदा को अपनी ओर खींच लेता है। अत: गुरू का साथ होने से व्यक्ति एक से अनेक हो जाता है और वह व्यक्ति का हर दर्द हर लेता है।

प्रश्न – क्या तामसिक शक्तियां व्यक्ति को प्रभावित करती हैं ?

उत्तर – इस ब्रह्माण्ड में हर प्रकार की ऊर्जा का अस्तित्व है लेकिन व्यक्ति को कोई भी ऊर्जा तभी प्रभावित करती है जब वह उस ऊर्जा को अपने अंदर आने के लिए उसके अनुकूल वातावरण पैदा करता है। वह अपने चारों ओर तथा अपने अन्दर जिस प्रकार का माहौल बनाता है उसी प्रकार की ब्रह्माण्डी (यूनिवर्सल) ऊर्जा उसके अन्दर समाहित होने लगती है तथा अपना प्रभाव दिखाने लगती है। उसी के अनुसार व्यक्ति का स्वभाव बनने लगता है और परिणाम आने लगते है।

प्रश्न – व्यक्ति का स्वभाव कैसे निर्मित होता है ?

उत्तर – व्यक्ति का मूल स्वभाव उसके माता-पिता द्वारा निर्धारित होता है। यह केवल गर्भ के समय में नहीं होता है बल्कि जन्म के बाद बच्चे को कैसे वातावरण में पाला जाता है यह भी उसके स्वभाव को निर्मित करने में मुख्य बात है। शिक्षा प्राप्त करते समय उसे कैसा वातावरण मिलता है, वह कैसे समाज में रहता है, ये सब बातें भी उसके स्वभाव को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति के अन्दर डाले गए सारे संस्कारों कोयदि जोड़ दिया जाए तो यह उसका स्वभाव बन जाता है।

प्रश्न – क्या स्वभाव में बदलाव लाया जा सकता है ?

उत्तर – स्वभाव के निर्माण में दो बातें मुख्य हैं – एक स्वार्थ और दूसरी परोपकार की भावना। जिस व्यक्ति के अन्दर स्वार्थ की भावना अधिक है उस व्यक्ति के स्वभाव में बदलाव ला पाना बहुत ही कठिन है। ऐसा व्यक्ति किसी भी ऐसे वातावरण से जुड़ने में डरता है जिसमें उसका स्वार्थ प्रभावित होता है। दूसरों के साथ चलने में या उनके साथ जुड़ने में उसका स्वार्थ बीच में रूकावट डालता है लेकिन जिस व्यक्ति के अन्दर परोपकार की भावना अधिक है उसकी यात्रा का कोई ठिकाना नहीं है। वह कहां और किसके साथ जुड़ जाए और कहां तक चला जाए यह केवल नियति ही बता सकती है। ऐसे व्यक्ति का नजरिया विशाल होता है और जहां नजरिया विशाल होता है वहीं पर आध्यात्मिक संभावना का जन्म होता है। स्वार्थी व्यक्ति कितना भी ध्यान करता रहे कितना भी सत्संग सुने, ऐसे व्यक्ति का आध्यात्मिक मार्ग अवरूद्ध ही रहता है जबकि परोपकार, दया तथा करूणा से भरा हुआ व्यक्ति किसी भी रूपान्तरण को सहज ही स्वीकार कर लेता है।

प्रश्न – गुरू व्यक्ति के स्वभाव में कैसे बदलाव लाता है ?

उत्तर – गुरू तो व्यक्ति का चोला ही बदल देता है। पूर्ण गुरू (शब्द भेदी गुरू) की शरण में जाकर व्यक्ति का पूनर्जन्म होता है लेकिन यह उसके समर्पण पर निर्भर करता है। व्यक्ति का जितना अधिक समर्पण होता है उसके स्वभाव में उतनी ही अधिक परिवर्तन की संभावना होती है। दुनियां का जितना भी ज्ञान है वह मनुष्य को भरता हैं लेकिन गुरू व्यक्ति को खाली करता है। व्यक्ति के अन्दर जितना अधिक ज्ञान होता है उतने ही कम समर्पण की संभावना है। गुरू तो एक सरिता के बहाव के समान है और ज्ञान व संस्कार व्यक्ति के अन्दर ऐसे बिन्दू हैं जो उसे उस बहाव में बहने से रोकते हैं। उसके अहंकार को बनाकर रखते हैं, उसके अस्तित्व कोगुरू के अस्तित्व में पूरी तरह से फनाह नहीं होने देते हैं। उसकी अलग पहचान बनाकर

रखते हैं। भक्त के अन्दर ये सारे संस्कार सहज ही गुरू के सामने जाते ही मिट जाते हैं तथा गुरू की चेतना में विलीन होकर गुरूमय हो जाते हैं और भक्त के अन्दर सहज ही आत्मिक नूर (ज्योति) प्रकट हो जाती है जिसके अन्दर वह निरंकुश होकर बहता चला जाता है। ज्ञान से भरपूर व्यक्ति हर कदम पर शंका करता है कि वह कही गल्त दिशा में तो नहीं जा रहा है। कोई भी शंका व्यक्ति को पल में आकाश से धरातल पर लाकर पटक देती है और व्यक्ति कभी भी आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर पाता है।

प्रश्न - आध्यात्मिक उन्नति का क्या अर्थ है ?

उत्तर - जब व्यक्ति की मात्रा अन्दर की तरफ आरम्भ हो जाए तब व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ होती है।

प्रश्न - अन्दर की यात्रा की क्या पहचान है ?

उत्तर - अन्दर की यात्रा में व्यक्ति बाहरी बंधन या बाहरी भक्ति को छोड़कर अन्तर में प्रवेश करता है। दोनों आंखें बन्द होकर एक हो जाती हैं। बाहर के सारे कर्मकाण्ड छूट जाते हैं। तीर्थ-व्रत, पूजा-पाठ, हवन-यज्ञ अन्तर में फलित होते हैं। सारे तीर्थ, शास्त्र आदि मनुष्य के अन्तर से ही प्रकट हुए हैं इसलिए जब आध्यात्मिक यात्रा आरम्भ होती है तो संसार और सारे धर्म-सम्प्रदायों को प्रकट करने वाली शक्ति के साथ व्यक्ति का जोड़ होने लगता है इसी को योग कहा जाता है। इस योग के द्वारा ही व्यक्ति इस सृष्टि और धर्म की आत्मा का साक्षात्कार कर पाता है।

प्रश्न - धर्म की प्राप्ति कब होती है ?

उत्तर - जब आध्यात्मिक यात्रा पूरी होती है तभी धर्म की प्राप्ति होती है। आध्यात्मिक यात्रा तब पूरी होती है जब व्यक्ति की चेतना शरीर, प्राण, मन व आत्मा के सारे दर्जे पार कर लेती है, उनके बीच की दीवारें विलीन हो जाती हैं। इसकी मोटी पहचान यह है कि व्यक्ति बाहर से सिमटकर अन्दर के नूर (प्रकाश) में चला जाता हैं। जितनी अधिक वृति एकाग्र होती हैं उतना ही अन्तर में नूर बढ़ता चला जाताहै। जितना व्यक्ति प्रेम और भक्ति में समाता चला जाता है यह नूर अन्तर में बाढ की तरह बहने लगता है और शरीर, मन व प्राण में जीवन भरने लगता है। व्यक्ति की कल्पना शक्ति आसमान से बातें करने लगती है। ब्रह्माण्ड के भिन्न-भिन्न तरह के नजारे प्रकट होने लगते हैं। व्यक्ति का पूरा अस्तित्व प्रकाश और दिव्यता से भर जाता है। इसके अतिरिक्त अन्तर में अनहद नाद फूटने लगता है जिसे कबीर साहब ने सुरत-शब्द योग

कहा है। यही राधास्वामी योग है। यह नाद (शब्द) परमात्मा की आवाज है जिसे पकड़कर सुरत (आत्मा) आध्यात्मिक मंजिल पर चढ़ाई करती जाती है और एक दिन अपने स्वामी से मिलकर साधर्म मुक्ति प्राप्त करती है। गीता साधर्म मुक्ति को ही असली धर्म की प्राप्ति कहती है। श्रीकृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन ! साधर्म मुक्ति के लिए संसार के सभी धर्मों का त्याग कर।

प्रश्न – क्या भाग्य को बदला जा सकता है ?

उत्तर – सतगुरू या सतसंगत से व्यक्ति के अन्दर और बाहर का वातावरण और जीवन को जीने का नजरिया बदल जाता है। एक बंद बीज है और एक अंकुरित बीज है। बंद बीज के अन्दर कोई जिज्ञासा नहीं है लेकिन अंकुरित बीज के अन्दर जीवन धारा बह निकली है। अब उस जीवन धारा को वातावरण के खतरों का सामना करना ही पड़ेगा। वातावरण का हल्का सा झोंका या छोटे से बच्चे का पैर या पृथ्वी की कठोरता उस अंकुरित बीज को पल में सामूल नष्ट भी कर सकते हैं और उसे पनपने का मौका भी दे सकते हैं। बंद बीज के अन्दर जो ताकत है वह बीज का भाग्य है जो बंद कोठरी में कैद है लेकिन ज्यों ही बीज के अन्दर जीवन का आरम्भ होता है उसका भाग्य वातावरण के साथ जुड़ जाता है। इसी प्रकार एक जिज्ञासू व्यक्ति अंकुरित बीज के समान है जो अपने विवेक और ज्ञान से उचित वातावरण का चयन कर सकता है और अपने भाग्य का निर्माण स्वयं ही कर सकता है।

प्रश्न – क्या अध्यात्म से सांसारिक कार्यों में सफलता प्राप्त हो सकती है ?

उत्तर – संसार में वही व्यक्ति महान बनता है जिसका हृदय विशाल होता है। जो व्यक्ति छोटी–छोटी बातों पर बिफर जाता हैं तथा अपने साथियों और वातावरण पर दोषार्पण करने लगता है या गल्त भाषा का प्रयोग करने लगता है वह सिकुड़ जाता है और अकेला बना रहता है। परन्तु जिस व्यक्ति का नजरिया विशाल होता है वह अपने साथ एक मजबूत वातावरण और मित्र मण्डली तैयार कर लेता है। ऐसा वातावरण केवल ऐसा व्यक्ति तैयार कर सकता है जो दूसरों की कठिनाई में उनकी मद्द करता है। भावनात्मक स्तर पर उनके साथ जुड़ता है। लेना या छीनना जिसका स्वभाव नहीं है बल्कि समर्पण और त्या की भावना सबके अंदर पैदा करता है। ये सभी गुण केवल आध्यात्मिक व्यक्ति के अन्दर ही हो सकते हैं। नास्तिक व्यक्ति का जीवन स्वार्थ और अवसरवादिता पर टिका होता है। ऐसा व्यक्ति कुछ समय के लिए ही अपना

प्रभाव जमा सकता है जो अस्थायी होता है और ऐसा व्यक्ति महान तो कतई नहीं बन सकता है।

प्रश्न – सांसारिक सुख व्यक्ति के लिए कैसे दुःखदायी हो जाता है ?

उत्तर – पूर्ण व्यक्ति वहीं हो सकता है जो बाहर के साथ-साथ अंदर की दुनियां को भी जानता है। बाहर की दुनियां का सबसे बड़ा भगवान पैसा है और अंदर की दुनिया का सबसे बड़ा भ्ज्ञगवान वह स्वयं (आत्मा) है। दोनों का ही आनंद और सुख भरपूर है। जो भी जिस दुनियां में गया वहीं खो गया। बाहर की उसकी दुनिया में जब व्यक्ति आगे बढ़ता है तो बाहरी सुखों और वासनाओं के प्रति उसकी भूख और तड़फ बढ़ती ही जाती है। कोई भी उपलब्धि कुछ समय के लिए सुख व शांति देती है लेकिन थोड़े ही समय में वह उपलब्धि छोटी पड़ जाती है और बेकली व तड़फ फिर जागने लगती है। जितनी भी बड़ी सांसारिक उपलब्धि होती जाती हैं व्यक्ति उतना ही असुरक्षित, भयभीत और शंकित होने लगता है। धीरे-धीरे विकास और पदार्थ की लालसा व्यक्ति के अन्दर इतनी बढ़ती जाती है कि वह जीवन के हर क्षेत्र में सबसे आगे रहना चाहता है और यह आगे रहने की लालसा उसके लिए आसक्ति का कारण बन जाती है, उसे अनेक बंधनों में इतना बांध देती है कि वह आजीवन इन सोने की जंजीरों में ही जीवन की शांति तलाश करने लगता है जो उसे कभी नहीं मिल पाती हैं। दूसरों से आगे निकलने की तड़फ कभी-कभी व्यक्ति को हैवान तक बना देती है।

प्रश्न – क्या आत्मिक सुख सांसारिक सुख भी दे सकता है ?

उत्तर – मनुष्य के द्वारा जितनी भी रचना की गई है वह सारी की सारी उसके अन्दर से निकलकर आई है। इसलिए बाहर की सारी रचना का स्रोत मनुष्य के अन्दर ही है। श्री अरविन्द, ह्रीगल और बुद्ध का विज्ञानवाद इस पूरी सृष्टि को ईश्वरीय विचार की ही अभिव्यक्ति मानते हैं। बाहर की सारी कलाएं, सारा ज्ञान-विज्ञान अन्दर से ही प्रकट हुए हैं। यदि अन्दर का ज्ञान नहीं है तो व्यक्ति धन का सदुपयोग भी नहीं कर पाता है। यदि अन्दर का ज्ञान नहीं है तो वह अच्छे और बुरे का भेद भी नहीं जान पाता है।

विश्व का इतिहास उठाकर देखें। आज तक संसार के जितने भी अद्‌भुत व्यक्ति आए हैं, जितने भी महान कार्य हुए है, कोई भी शांति, कोई भी क्रांति, कोई भी आजादी का आन्दोलन, कोई भी महान वैज्ञानिक, समाज सुधारक या क्रांतिकारी चाहे नास्तिक कार्ल मार्क्स और भगत सिंह हों या महात्मा गांधी, अकबर, महाराणा प्रताप, वैज्ञानिक कैपलर, कोपरनिक्स, गैलिलियो,

न्यूटन या अह्नस्टाईन हों, जो भी ऊंची पदवी पर पहुंचा हुआ व्यक्ति हो, इन सब का आधार ढूंढ़ने की कोशिश करना। आप पाएंगे किइन सब के आधार में कोई न कोई विशाल आध्यात्मिक बीज अवश्य ही रहा है क्योंकि अध्यात्मक ही सारी ऊर्जा का स्रोत है। यदि व्यक्ति को आत्मिक शक्ति, दृढ़ संकल्प और अटूट विश्वास देता है और जहां पर ऐसी शक्ति व गुण होते हैं वहां पर कोई ना कोई अद्वितीय आत्मा का जन्म होता है या कोई न कोई क्रांति का बीज पड़ता है। आत्मा में रहने वाला व्यक्ति ही अन्दर और बाहर के संतुलन को बनाकर रख सकता है। वह बाहर की दुनिया में व्यवहार करता हुआ भी आत्मिक स्रोत से जुड़ा रहता है इसलिए बिखरकर टूटता नहीं और हमेशा दूसरों की मद्द करता हुआ चलता है। जब भी अन्दर और बाहर का यह संतुलन बिगड़ता है चाहे वह एक व्यक्ति का हो या एक परिवार, पूरे समाज या पूरी प्रकृति का हो तभी-तभी हमें किसी न किसी आपदा, संकट या प्रकृति के भीषण कोप का सामना करना पड़ता है। इसलिए आत्मिक सुख का भोग करते हुए ही सांसारिक सुख की प्राप्ति सम्भव है।

प्रश्न - विचार का मनुष्य के व्यक्तित्व पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर - आज का विज्ञान कहता है कि व्यक्ति जैसा विचार करता है उसके अन्दर वैसे ही हारमोन व एन्जाईम निकलने लगते हैं और यही हारमोन व्यक्ति के खानपान और व्यवहार को प्रभावित करते हैं। जब लम्बे समय तक कोई विचार मन के अन्दर तपता है तो वह विचार व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है और आसपास का वातावरण भी उससे प्रभावित होने लगता है। आत्मनिष्ठ या क्रिएटिव धर्म वह धर्म है जो व्यक्ति के तन, मन और विचार को हमेशा गति प्रदान करता है और चेतना में एक नई स्फूर्ति, ताजगी और विशालता पैदा करता है। परम्परागत धर्म व्यक्ति को मुर्दा बनाकर रखता है जिसमें पूर्वजों से चली आ रही केवल एक मर्यादा का पालन किया जाता है। वह व्यक्ति के अन्दर प्रतिक्रिया पैदा नहीं करता है, उसे नयापन नहीं देता है। इसलिए जहां भी आत्मनिष्ठ धर्म की पालना होती है वहाँ पर व्यक्ति आत्मा की विशालता में जीता है और मन के ऊंचे स्तर पर ठहरता है तथा उसी तरह के रसायन उसके शरीर और मन में पैदा होते हैं जिससे चेतना में उछाल आता है। शरीर और मन के ऐसे वातवरण से जो औलाद अस्तित्व में आती है वह उसी ऊर्जा से ओतप्रोत होती है जिसकी कल्पना माता-पिता और पूर्वजों ने की होती है। गर्भ में जब बीज गिरता है तो वह उसी प्रभाव को शोषित करके आता है जो उस समय माता-पिता के खून में गहराई से समाया हुआ

होता है। ऐसा बीज अवश्य ही महानता की ऊर्जा अपने साथ लेकर आता है। यह हो सकता है कि वह बीज आस्तिक न होकर नास्तिक हो क्योंकि आत्मा के इसी प्रभाव को लेकर, तपस्या और संकल्प की शक्ति लेकर संसार में बड़े-बड़े राक्षस भी उतरकर आए हैं। महाभारत का युद्ध इसी मनोवृत्ति का परिणाम है। यही कारण है कि आशक्तियुक्त अध्यात्म कभी-कभी संसार को विनाश की तरफ भी धकेल सकता है।

प्रश्न - क्या अध्यात्म से संसार का विनाश भी हो सकता है ?

उत्तर - यदि अध्यात्म व ध्यान आशक्तियुक्त और आग्रहों से ग्रसित हो तो ऐसा अध्यात्म संसार में प्रलय भी ला सकता है। रावण का जन्म, हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यक का जन्म और महाभारत का युद्ध ऋषियों के गिरने का परिणाम है। जब ऋषि वासनाओं का शिकार होता है और राजमहल में जाकर औलाद पैदा करता है या सुन्दरता के बंधन में आकर अपनी कामवासना की पूर्ति करता है तब-तब संसार को रामायण और महाभारत जैसे युद्धों का सामना करना पड़ता है। इसलिए अध्यात्म एक ऐसी दोधारी तलवार है जो व्यक्ति को सुरक्षा भी देती है और यदि इसका दुरूपयोग किया जाए तो यह उसी व्यक्ति का विनाश भी कर सकती है।

प्रश्न - आध्यात्मिक मार्ग पर चलते हुए अनपढ़ व्यक्ति भी ज्ञान से परिपूर्ण कैसे हो जाता है ?

उत्तर - अध्यात्म के बिना व्यक्ति का जीवन ही सम्भव नहीं है। जहां भी विचार जन्म लेता है, जहां भी वैचारिक मंथन है वहीं अध्यात्म है। अध्यात्म एक ऊर्जा है जो जीवन को गति देती है और जीवन का भेद खोलती है लेकिन जो व्यक्ति अध्यात्म को गहराईसे जानना चाहता है वह बहुत ही गहन वैचारिक और आत्मिक मंथन से होकर गुजरता है जो व्यक्ति को निखारता है। यही कारण है कि आध्यात्मिक मार्ग ने संसार को अनेक महापुरुष दिए हैं जैसे कबीर, नानक, हजरत मुहम्मद, मेरे सतगुरू ताराचन्द जी महाराज आदि जो अनपढ़ थे लेकिन आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रहे हैं। स्वयं की खोज व्यक्ति को पूर्णता देती है। स्वयं का भेद जानने वाला व्यक्ति दूसरों के मन की बात पढ़ने लगता है और सहज ही उनकी समस्याओं का समाधान कर देता है। किसी भी सांसारिक मार्ग में ऐसी पूर्णता सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक व्यक्ति के अन्दर अभ्यास के द्वारा आत्मिक नूर प्रकट हो जाता है जो उसे चुम्बक का प्रभाव देता है और हर प्रकार के ज्ञान-विज्ञान का स्रोत है जिससे हर प्रकार की बरकत स्वत: ही ऐसे व्यक्ति की तरफ बहकर आने लगती है। ऐसे व्यक्ति की वाणी में ताकत आ जाती है जो

समाज में क्रांति पैदा कर सकती है। एक ऐसी अहिंसक क्रांति जो समाज को दिव्यता प्रदान करती है।

प्रश्न – क्या आज का अध्यात्म धन, आश्रमों और अमीर लोगों का मोहताज हो गया है ?

उत्तर – स्थूल संसार में जीवन जीने के लिए स्थूल साधनों की जरूरत पड़ती है। इस संसार का कोई भी कार्य करने के लिए पैसे की आवश्यकता पड़ती है, इसी प्रकार अध्यात्म भी है लेकिन आध्यात्मिक कार्य के लिए यदि पैसा इकट्ठा किया जाता है जो गुरू के रहन–सहन और ठाइ–बाट के लिए प्रयोग किया जाता है ऐसा अध्यात्म व्यक्ति को मुक्त नहीं कर सकता है, उसकी आत्मिक उन्नति में सहायक नहीं बल्कि बाधक बनता है और उसके अन्दर भी संसार के प्रति आशक्ति और बंधन पैदा करता हैं गुरू यदि त्याग का जीवन जीता है, गुरू यदि स्वयं कमाकर खाता है, गुरू यदि किसी के धन, आश्रम और ट्रस्ट का मोहताज नहीं है तो उसके अनुयायी भी उसी प्रकार का जीवन जीने का प्रयत्न करते हैं। गुरू स्वयं यदि विलासिता का जीवन जीता है तो ऐसे गुरू के अनुयायी भी विलासिता और भोग के जीवन से बच नहीं सकते हैं और इसका परिणाम भी भुगतना ही पड़ेगा। यह बात सही है कि आज का अध्यात्म धन, आश्रमों और अमीर लोगों का मोहताज हो गया है लेकिन सच्चा अध्यात्म इन सब साधनों का सम्यक रूप से प्रयोग करता है। आज का अध्यात्म यदि झोंपड़ी की तरफ नहीं जाता है तो वह आलीशान महलों की तरफ तो कतई नहीं जा सकता है।

प्रश्न – क्या मन व अहंकार वास्तव में बुरे हैं ?

उत्तर – मन व अहंकार इस सृष्टि की जान हैं। इनके बिना किसी भी आकार व सृष्टि की कल्पना सम्भव ही नहीं है। कपिल मुनि, श्री अरविन्द, हिगल, प्लेटो जैसे आध्यात्मिक दार्शनिक और बौद्ध धर्म का विज्ञानवाद इस सृष्टि को मन अर्थात विचार का ही स्थूल रूप में रूपान्तरण मानते हैं और जब भी आरम्भिक विचार (मन) ने आकार लेना आरम्भ किया उसी समय अहंकार का आरम्भ हो गया था। इतना अवश्य है कि मनुष्य के अन्दर मन व अहंकार उन्नत अवस्था में विद्यमान रहते हैं इसलिए मनुष्य के पास अनंत ताकत भी मौजूद है जो असम्भव से असम्भव कार्य करने में समर्थ है। यदि इसी मन और अंहकार की गति नीचे की तरफ अर्थात भोग–विलास की तरफ होने लगती है तो मनुष्य शैतान बनने लगता है और जब इनकी गति ऊपर की तरफ या आत्मा के अन्दर होने लगती है तो यही मन रूहानी बनकर दैविक हो जाता

है। कबीर साहब कहते हैं कि जब मन के सारे मैल उतर जाते हैं तोयह परमात्मा तुल्य हो जाता है –

कबीर मन निर्मल भया जैसे गंगा नीर।
पीछै-पीछै हरि फिरै कहत कबीर-कबीर।।

प्रश्न – क्या अध्यात्म रोजी-रोटी दे सकता है ?

उत्तर – इसका जवाब पहले ही आ चुका है कि अध्यात्म और सच्चे धर्म के पालन के बिना कोई भी सांसारिक सुख सम्भव नहीं है। केवल रोजी-रोटी ही नहीं बल्कि अध्यात्म से संसार की बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान हो सकता है चाहे वह आतंकवाद की समस्या ही क्यों न हो लेकिन इसके लिए हम सब को विशाल दृष्टि करने की आवश्यकता है एक दूसरे से प्रेम करने की जरूरत है। आत्मिक विकास से ही अज्ञान का नाश हो सकता है और विवेक शक्ति का जन्म होता है। जब ये गुण मनुष्य के अन्दर पैदा हो जाते हैं तो वह हमेशा प्रकाश व दिव्यता में जीता है, उसके अन्दर बोध का दीया जलता रहता है तथा वह संसार में रहते हुए जो भी फैसले करता है प्रकाश में बैठकर करता है। हम अंधकार को हटा नहीं सकते हैं लेकिन यदि साथ में जलता हुआ दीया हो तो अंधकार का सीना चीरकर आगे बढ़ सकते हैं। इसलिए बुद्ध कहते हैं – अप्प दीपो भव अर्थात स्वयं का दीपक बनो। इसके अतिरिक्त अध्यात्म व ध्यान से हमारी बिखरी हुई वृत्ति (चेतना) एकाग्र होती है और व्यक्ति के अन्दर चुम्बक का प्रभाव आ जाता है। इस प्रभाव को अब विज्ञान के द्वारा मापा जा सकता है। व्यक्ति के चारों ओर का विद्युतचुम्बकीय दायरा मजबूत हो जाता है और हर तरह की बरकत ऐसे व्यक्ति की तरफ स्वयं ही खिंचकर आने लगती है। आपको समाज में यदि कोई भी व्यक्ति ऐसा नजर आए जो हर तरह से समर्थ हो, राजनैतिक रूप से, आर्थिक या सामाजिक रूप से, उस व्यक्ति का केवल दो पीढ़ी पहले का इतिहास देख लीजिए। आप पाएंगे कि उस परिवार में उसके पूर्वजों के द्वारा सच्चाई, प्रेम या त्याग का जीवन जीया गया है। उसके पूर्वजों के द्वारा कोई ना कोई ऐसा कार्य अवश्य किया गया है जो दूसरे लोग नहीं कर पाए। इसलिए वह व्यक्ति दूसरे आसपास के लोगों से स्थूल संसार में भी आगे बढ़ गया है। जिसने भी सच्चाई से धर्म की रक्षा की है धर्म ने भी उसकी हर प्रकार से रक्षा अवश्य ही की है – धर्माः रक्षति रक्षितः।

प्रश्न – सबसे श्रेष्ठ बनने के लिए व्यक्ति को क्या करना चाहिए ?

उत्तर – यदि व्यक्ति को सबसे अलग बनना है तो उसे जीवन में कोई न कोई कार्य भी ऐसा अवश्य करना होगा जो सबसे अलग हो। आप सबसे ऊंचा बनना चाहते हैं लेकिन सारे कार्य दूसरों के समान करते हैं तो फिर बड़ा बनना सम्भव नहीं है। यदि आप कुछ भी नहीं कर सकते हैं तो इतना अवश्य कर सकते हैं कि अपने छोटे से बच्चे को इतना कह दीजिए कि बेटा रास्ते में यदि कोई पत्थर हो या कांटा हो तो उसे हटाने का प्रयत्न कीजिए लेकिन बच्चा इस आदत को तभी अपनाएगा जब वह आपको ऐसा करते हुए देखेगा। आप देखेंगे कि यह छोटी सी आदत उस बच्चे के जीवन में बड़े-बड़े परिवर्तन लाएगी। उस बच्चे का जीवन के प्रति नजरिया ही बदलने लगेगा। उसके अन्दर सकारात्मक सोच का जन्म होगा तथा दूसरों की मद्द करने की आदत का विकास होगा। यदि कोई व्यक्ति दूसरों के रास्ते का पत्थर हटाता हैं तो कुदरत भी ऐसे व्यक्ति के रास्ते के पत्थर हटाने में अवश्य ही मद्द करेगी। ऐसा कोई भी विचार मन को सुंदर बनाता है और जब मन सुंदर होने लगता है तो शरीर भी सुंदर हो जाता है तथा आने वाली प्रणाली भी शरीर, मन व आत्मा से सुन्दर होती चली जाती है। इसलिए श्रेष्ठ व्यक्ति होने के लिए और सबसे अलग कुछ बनना है तो सबसे अलग आदतों का भी विकास करना होगा। ऐसी आदतें जो आपको सकारात्मक व विशाल नजरिया प्रदान करें और आप अकेले होकर नहीं बल्कि एक विशाल समुह की चेतना का प्रतिनिधित्व करने के योग्य हो सकें।

प्रश्न – क्या नास्तिक व्यक्ति महान नहीं बन सकता है ?

उत्तर – नास्तिक व्यक्ति महान बन सकता है लेकिन बहुत महान नहीं। कार्ल मार्क्स, जिन्होंने साम्यवाद व कम्यूनिस्ट विचारधारा को जन्म दिया, उन्हें सबसे बड़ा नास्तिक कहा जाता है, शहीद भगत सिंह को नास्तिक होने की संज्ञा दी जाती है लेकिन इन व्यक्तियों की जब आप पारिवारिक पृष्ठभूमि देखेंगे तो पाएंगे कि इन जैसे सभी व्यक्ति अध्यात्म की संतान थे। भारत देश के जितने भी बड़े से बड़े कम्यूनिस्ट नेता हैं उन सभी के नाम परमात्मा के नाम पर हैं बल्कि कुछ ने नाम में तो दो-दो भगवानों के नाम जुड़े हुए हैं। इससे स्पष्ट तौर पर उनकी पृष्ठभूमि का पता लगता है। एक नास्तिक पिता कभी भी अपनी औलाद का नाम ईश्वर के नाम पर नहीं रख सकता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो भी महान व्यक्ति संसार में हुए हैं या आज मौजूद हैं उन सभी का जन्म आत्मा की विशालता से हुआ है।

प्रश्न – आस्तिकता या नास्किता का मनुष्य के व्यक्तित्व पर कैसा प्रभाव पड़ता हैं ?

उत्तर – सर्वेक्षण बताते हैं कि संसार के जितने भी अमीर व्यक्ति हैं उनमें से 90 फिसदी से अधिक व्यक्ति धार्मिक हैं। नास्तिक व्यक्ति शंका के साथ चलता है और कार्य के पूरा होने तक सफलता के प्रति शंकित रहता है। उसे अपने से अतिरिक्त किसी दूसरी शक्ति पर विश्वास नहीं है जो उसे देखती है और उसकी सहायता करती है। इसलिए वह हमेशा अकेला होकर कार्य करता है। वह केवल स्वयं की क्षमता पर विश्वास करता है, इसलिए उस क्षमता से बढ़कर कार्य करता हुआ वह घबराता है। वह हर स्थान पर अपना हक जताता है क्योंकि त्याग और समर्पण जैसे गुण आस्तिक व्यक्ति में अधिक हो सकते हैं, नास्तिक व्यक्ति में ये गुण स्वभावतः ही कम होते हैं इसलिए वह स्वार्थी भी अधिक होता है। यदि ऐसा व्यक्ति कोई विशेष व्यक्ति है तो वह अपनी सुरक्षा के प्रति भी अधिक भयभीत रहता है क्योंकि जिस व्यक्ति को ईश्वर पर विश्वास नहीं है वह किसी पर भी आसानी से विश्वास नहीं करेगा। यदि व्यक्ति में ईश्वर भक्ति नहीं हैं तो ऐसे व्यक्ति के अन्दर मातृभक्ति, पितृभक्ति या देशभक्ति की भावना की भी कमी होती है क्योंकि हर कार्य में स्वार्थ उसके लिए सर्वोपरि रहता है। नास्तिक व्यक्ति छोटा सा नुकसान होने पर छटपटाने लगता है और पागल भी हो सकता है लेकिन आस्तिक व्यक्ति उसे परमात्मा की मर्जी समझकर जल्दी भूल जाता है और आगे बढ़ जाता है। आस्तिक व्यक्ति उस बच्चे के समान निश्चित है जो घने जंगल में जाते हुए भी अपने पिता की उंगली पकड़े रहता है और उसकी ताकत पर विश्वास करके उसे सहज ही पार कर लेता है। परमात्मा सृष्टि के हर रिश्ते का आधार है और जिस व्यक्ति ने उस रिश्ते की जड़ को ही काट दिया है वह इस संसार में उस टूटे हुए सितारे के समान है जो शीघ्र ही आसमान में बिखर जाता है। आस्तिक व्यक्ति में ये सारे गुण स्वभाव से ही मौजूद रहते हैं क्योंकि वह खण्ड-खण्ड होकर नहीं जीता है, उसका जीवन ऐसे विश्वास पर टिका हुआ रहता है जो पल-पल उसकी रक्षा करता है। ऐसा नहीं है कि आस्तिक व्यक्ति में नास्तिक व्यक्ति के ये गुण नहीं होते हैं बल्कि कभी-कभी अधिकता के साथ मिलते हैं लेकिन वही व्यक्ति महान बन पाते हैं जिनके अन्दर आस्तिकता के ये गुण मौजूद होते हैं।

प्रश्न – क्या नास्तिकता और अध्यात्म का कोई आपसी संबंध है ?

उत्तर – दोनों का गहरा और अटूट संबंध है। जितना आस्तिकता का अध्यात्म से संबंध है उतना ही नास्तिकता का है। आस्तिकता और नास्तिकता अध्यात्म के दो पैर हैं जिनके ऊपर वह चलता है। दोनों में से यदि एक नहीं है तो कोई भी जीवन की गति सम्भव नहीं है। एक

पोजिटिव है तो दूसरा नैगेटिव, एक घनात्मक है तो दूसरा ऋणात्मक, एक विधेयात्मक है तो दूसरा निषेधात्मक। दोनों के संघर्ष से ही जीवन की उत्पत्ति होती है और यह सृष्टि आगे बढ़ पाती है। एक आस्तिक धर्म है तो दूसरा नास्तिक धर्म है लेकिन दोनों की उत्पत्ति एक ही स्रोत से है। ऊर्जा का यही स्रोत अध्यात्मक है जो अनादिकाल से सरिता की तरह जीवन का बीज लेकर लगातार बहता आ रहा है। इसमें कभी और कोई भी विराम नहीं लगता है।

प्रश्न – कुछ लोग कहते हैं कि परमात्मा केवल एक कल्पना है, क्या यह सच है ?

उत्तर – वह संसार भी तो मनुष्य की कल्पना ही है। हर मनुष्य ने अपने चारों तरफ के संसार की रचना कल्पना से ही की है। हम जब भी कोई कार्य करते हैं सबसे पहले हमारे मस्तिष्क में उस कार्य को करने का विचार उठता है। फिर उसका नक्शा तैयार होता है। उदाहरण के तौर पर जब किसी व्यक्ति को मकान बनाना होता है तो वह व्यक्ति उसका नक्शा अपने दिमाग में तैयार करता हैं फिर वह नक्शा धीरे-धीरे पक्का होता जाता है, उसके बाद ही मकान स्थूल रूप में बनता है। संसार का कोई भी कार्य है पहले वह विचार में आता है और हर विचार एक कल्पना ही तो है। विचार ही मनुष्य को जन्म देता है तथा विचार ही उसके जीवन को चलाता है। परमात्मा भी एक विचार है जो मनुष्य के अन्दर सर्वश्रेष्ठ, शुद्ध, बुद्ध बनने की प्रेरणा पैदा करता है। सबसे उत्तम व श्रेष्ठ विचार को ही परमात्मा का नाम दिया जा सकता है। यही विचार उसके जीवन को बदल देता है, उसमें आमूलचूल परिवर्तन ला देता है। मुर्दे में प्राण फूंक देता है, अंधे का सहारा बन जाता हैं यही विचार हिटलर बन जाता है, कार्ल मार्क्स बन कर गरीब की आशा बन जाता है या फिर यही महात्मा बुद्ध, कबीर और ईसा मसीह बनकर लोगों का हजारों वर्ष तक मार्गदर्शन करता है। गहराई से देखा जाए तो यहां की हर वस्तु कल्पना ही है जो कुछ समय के बाद नष्ट हो जाएगी। जब हर वस्तु विचार है तो परमात्मा सर्वश्रेष्ठ विचार का नाम है। जब हर वस्तु कल्पना की देन है तो परमात्मा सर्वश्रेष्ठ कल्पना का नाम है।

प्रश्न – कुछ लोगों का मानना है कि जो लोग कायर होते हैं वही परमात्मा को मानते हैं, आपका क्या विचार है ?

उत्तर – क्या एक कायर व्यक्ति असीम को ढूंढ़ने की हिम्मत कर सकता है ? क्या एक कायर पुरूष अनंत के अन्दर छलांग लगा सकता है ? असीम, अनंत और अपरिमित के अन्दर झांकने की हिम्मत वही व्यक्ति कर सकता है जो स्वयं को खोने का जज्बात रखता है। जो लोग ऐसी बातें कहते हैं वहीं डरपाके व कायर होते हैं जो एक सीमा से आगे बढ़ने की हिम्मत नहीं रखते

हैं, जो केवल एक हद तक ही सोच पाता हैं उससे आगे पैर बढ़ाना उनके लिए असम्भव है। उनके लिए संसार की हर वस्तु एक गणना है, वे हर काम में नफा-नुकसान देखकर ही आगे बढ़ पाते हैं जबकि जीवन एक गणित नहीं है, मनुष्य के दिमाग की नापतोल नहीं है। जीवन एक बहती हुई सरिता का नाम है जो हमारे बनाए हुए रास्ते पर नहीं चलता है। वह अपना बहाव स्वयं निर्धारित करता है और जो लोग परमात्मा के नाम का व्यापार करते हैं वे तो दूसरों के लिए अपना धन ही नहीं, तन और जीवन भी न्यौछावर कर देते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। ऐसे लोग जीवन को सांसारिक उपलब्धियों के साथ नहीं जोड़ते है। इन्हें सांसारिक नफा-नुकसान परमात्मा की प्राप्ति के आगे छोटा मालूम पड़ता है। ऐसे व्यक्ति विशाल हृदय के इन्सान होते हैं जो दूसरों के हित को ऊपर समझते हैं।

प्रश्न - कुछ नास्तिक कहते हैं कि परमात्मा अफीम का नशा है, वास्तविकता क्या है ?

उत्तर - संसारी व्यक्ति के लिए दुनिया के भोगों की प्राप्ति अफीम का नशा है तो परमार्थिक व्यक्ति के लिए परमात्मा की प्राप्ति अफीम का नशा है। जो भी आदमी धुन के पक्के हैं चाहे वे सांसारिक हैं या परमार्थिक दोनों ही अपने कार्य के प्रति पागल की हद तक चले जाते हैं। जो संसारी हैं वे अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए दानव तक बन जाते हैं, दूसरों की हानि करते हुए भी नहीं हिचकिचाते हैं लेकिन परमार्थिक व्यक्ति दिव्यता की खोज के लिए तड़फते हैं। दिव्यता का पान करने के बाद जब ये व्यक्ति संसार की कर्मभूमि में उतरते हैं तो दूसरों को भी उस अमृत का पान कराने में प्रेरणा का स्रोत बन जाते हैं। धन्य है ऐसा नशा जो घातक नहीं है केवल दातक है। यहां जो भी व्यक्ति अपनी मंजिल की प्राप्ति करना चाहता है उसके अन्दर नशा होता ही है और यह नशा यदि परमात्मा की खोज के लिए है तो ऐसे नशे के सामने हमें नतमस्तक होना चहिए।

प्रश्न - क्या सत्संग केवल धन कमाने का साधन बन गया है ?

उत्तर - आजकल के सत्संग व्यक्ति को मजबूत नहीं बल्कि कमजोर बना रहे हैं। उसे आत्मनिर्भर बनाने के बजाए बाहरी शक्तियों पर निर्भर बना रहे हैं। हर रोज नए देवी-देवता, नए तीर्थ-व्रत अस्तित्व में आ रहे हैं। वेदों में गिने-चुने देवताओं व दैवी शक्तियों का वर्णन है। उपनिषदों में से एक ब्रह्मकी ही बड़ाई की गई है, बाकि सब मिथ्या व छल कहा गया है। गीता के सातवें व नौवे अध्याय में स्पष्ट रूप से देवपूजा करने वालों को कामी, अल्पबुद्धि व अविवेकी कहा गया है। आदि शंकराचार्य सारी साकार पूजा को माया कहते हैं जो भिन्न रूपों

में आकर मनुष्य को ढगती है। शंकराचार्य जी ने हिन्दू धर्म की रक्षा के लिए ही पंचापतन (पांच देवताओं की पूजा) का सिद्धांत दिया और कहा कि यदि हिन्दू धर्म को बचाना है तो विविध देवताओं की पूजा छोड़नी होगी और निराकार ब्रह्म को ध्येय बनाना होगा। यही कबीर, नानक, बुद्ध, स्वामी दयानंद, महावीर स्वामी, दादू, पल्टू, रविदास ने कहा और यही राधास्वामी पंथ के सतों ने कहा। इतिहास गवाह है कि जिसने भी एक की पूजा की, एक को आधार माना वही उन्नति के शिखर पर पहुंचा। कबीर साहब कहते हैं - एक साधे सब सधै सब साधे सब जाए। अनेक की पूजा करने से व्यक्ति बिखर जाता है। आज के सौ में से निन्यानवे सत्संग व्यक्ति को बिखराने का काम कर रहे हैं। उसे ऊपर अध्यात्म के नाम पर एक मैल और चढ़ा रहे है, ऐसा मैल जो सारे संसारी मैलों से बड़ा है क्योंकि इस मैल के चढ़ने से तो आत्मा ही मर जाती है। व्यक्ति असली मार्ग से भटक जाता है लेकिन लोगों को खुश करने के लिए और अध्यात्म के व्यापार को बढ़ाने व लाभ कमाने के लिए अनेक गुरू मैदन में आ गए हैं जो अध्यात्म के नाम पर केवल धन कमाने का व्यापार कर रहे हैं।

प्रश्न - क्या धर्म देश और समाज को सुरक्षा दे सकता है ?

उत्तर - आत्मिक धर्म की प्राप्ति के लिए व्यक्ति को इंसान के बनाए हुए धर्म को नहीं बल्कि प्रकृति के बनाए धर्म को अपनाना होगा। प्रकृति का धर्म है सारी विभिन्नता को अपनाते हुए एकता के सूत्र में बंध जाना। प्रकृति कभी भी आवश्यकता से अधिक दूसरों का शोषण नहीं करती है। एक-दूसरे अस्तित्व को साथ लेकर आगे बढ़ती है। हर कण, हर अस्तित्व एक-दूसरे अस्तित्व को साथ लेकर आगे बढ़ती है। सारा ब्रह्माण्ड इसी सिद्धांत पर ठहरा हुआ है। यही खिंचाव की शक्ति जो प्रेम की शक्ति है हर कण व हर स्थान पर मौजूद है, कोई भी जगह इससे खाली नहीं है। इसीलिए प्रेम को एक पशु, एक पौधा और यहां तक कि एक निर्जीव कण भी मानता है। व्यक्ति मंदिर में जाता है उससे एक पौधे या एक पशु को कोई सरोकार नहीं है, धर्म स्थान पर रखी गई मूर्ति उनके लिए कोई मायने नहीं रखती है क्योंकि यह मनुष्य का धर्म हो सकता है एक पशु या पौधे का नहीं। जब कोई प्राकृतिक आपदा आती है तो उनके लिए किसी धार्मिक स्थान व धर्मशास्त्र की अहमियत नहीं होती है। वह सभी चीजों को समान रूप से बरबाद करती है बल्कि मनुष्य ही अपने प्रयत्न से इनकी रक्षा कर पाता है। अत: धर्म वही शास्वत हो सकता हैं जिसे प्रकृति की हर वस्तु माने। हमारे सभी धर्म पक्षपातपूर्ण हैं जिसे प्रकृति मान्यता नहीं देती इसलिए ये कभी भी आत्मिक धर्म नहीं हो सकते हैं। यही कारण है

कि मैं प्रेम को व्यवहारिक धर्म कहता हूं जहां मनुष्य की बनाई हुई सभी दीवारें ध्वस्त हो जाती है और दर्शन होता हें एक शाश्वत सत्ता का। ऐसी दिव्य सत्ता जिसे ढूंढ़ने के लिए कहीं बाहर या दूर जाने की जरूरत नहीं है। इस दिव्य सत्ता की दिव्य वाणी हमेशा व्यक्ति के अन्दर नाद बनकर गूंजती रहती हैं, कलमा सुनाती रहती है, अकथ कथा या अकथ कीर्तन करती रहती है। यह दर्शन या धर्म व्यक्ति को स्वामित्व देता है, इसके साथ-साथ दूसरों के विचारों व विभिन्न मतों को मान्यतादेता है, प्रकृति का सृजन करता है, आपसी प्रेम को बढ़ाता है और एक दूसरे को साथ लेकर चलने की प्रेरणा देता है, यही प्राकृति धर्म है। इंसान के बनाए हुए सारे धर्म इसमें विलीन हो जाते है। लाओत्से कहते हैं कि प्रकृति को अन्दर दिये हुए गूढ़ संदशे को जानो, उसके अंदर आध्यात्मिक रहस्य छिपा हुआ है। जब ऐसा धर्म (आत्मिक धर्म) मनुष्य के अन्दर उदय होगा तब देश व समाज स्वयं ही सुरक्षित हो जाएंगे।

प्रश्न - क्या धर्म बिखरे व्यक्तित्व और समाज को जोड़ सकता है ?

उत्तर - आत्मिक धर्म केवल जोड़ने का कार्य करता है, तोड़ने का नहीं। यद्यपि यह सही है कि प्रकृति में जोड़ना व तोड़ना एक प्रक्रिया का हिस्सा हैं लेकिन यह तोड़ने का नियम जोड़ने के लिए है। उदाहरण के तौर पर हमारे शरीर में जब भोजन जाता है तो उसकी उर्जा भिन्न-भिन्न हिस्सों में टूट जाती है। उसमें से निकलने वाली उर्जा हमारे शरीर, मन व आत्मा के विकास में सहायता करती है। उस भोजन में से जो अवांछित मल-मूत्र निकलता है वह जमीन व वातावरण के दूसरे जीवों को भोजन प्रदान करता है। यही जीव प्रकृति के कार्य को आगे बढ़ाने में मद्द करते हैं तथा भूमि की उर्वरा शक्ति को बढ़ाते हैं। जो धर्म पूरी प्रकृति को जोड़ने का कार्य करता है ऐसा धर्म कभी भी बिखराने का काम नहीं करता है। इसके अतिरिक्त धर्म ध्यान करने की शक्ति प्रदान करता है। ध्यान करने से व्यक्ति के अन्दर की बिखरी हुई वृत्ति एकाग्र होती है। जिस प्रकार एक लोहे के टुकड़े की सारी उर्जा को यदि अनुशासित करके एक दिशा में प्रवाहित कर दिया जाए तो वह चुम्बक बन जाता है, इसके अन्दर विद्युत-चुम्बकीय तंरगें पैदा हो जाती हैं और इसकी शक्ति कई गुणा बढ़ जाती है। इसी प्रकार ध्यान करने से मनुष्य के अन्दर का बिखराव कम हो जाता है और वह स्वयं का मालिक बन जाता है। यही कारण है कि सिद्ध पुरूष की इच्छाशक्ति मजबूत हो जाती है। आत्मज्ञान न होने की वजह से व्यक्ति दर-दर भटकता रहता है और दु:खों को आमंत्रित करता रहता है। दूसरों के हाथों का खिलौना बना रहता है। महात्मा बुद्ध कहते हैं कि व्यक्ति के दु:खों का कारण अज्ञान है उसका नसीब

या बाहर की कोई ताकत नहीं। धर्म व्यक्ति को पूर्ण बनाता है और उसके हर प्रकार के बिखराव को कम करता है।

प्रश्न – व्यक्तिगत अस्तित्व व ब्रह्माण्ड में कितनी समानता है ?

उत्तर – ब्रह्माण्ड और परमात्मा का भेद यदि जानना है तो पहले स्वयं (आत्मा) के बारे में जानना पड़ेगा। व्यक्ति के सबसे निकट वह स्वयं है। आदमी इस रचना की सबसे अंतिम कड़ी है इसलिए उसके अन्दर इस रचना के सारे अक्ष बीज रूप में पड़े हुए हैं। जब वह ध्यान के द्वारा शरीर के ऊर्जा चक्रों को जगाता है तो उसे सृष्टि के हर ऊर्जा स्तर पर साक्षात्कार होता है अर्थात उसकी झलक मिलती है। इसलिए भारतीय मनीषियों ने कहा है – यत पिण्डे तत ब्रह्माण्डे अर्थात जो पिण्ड (शरीर) में है वहीं ब्रह्माण्ड में है।सुकरात कहते हैं – नो दाइसेल्फ (स्वयं को जानो), ईसा मसीह कहते हैं – किंगडम आफ हैवन इज विदइन यू अर्थात ईश्वर का साम्राज्य तुम्हारे अन्दर है। जिसने भी परमात्मा को खोजने की कोशिश की, उसे अपने अन्दर पाया। जितने भी महान वैज्ञानिक आए और जिन्होंने ब्रह्माण्ड का भेद खोला वे सभी अन्तर्मुखी थे। कापरनिक्स स्वयं पादरी थे, कैपलर का दृढ़ विश्वास था कि ब्रह्माण्ड (मैक्रोकोज्म) और व्यक्ति (माइक्रोकोज्म) में गहरा संबंध है। गैलीलियो साधुओं की पाठशालाओं में शिक्षा लेकर आगे बढ़े लेकिन दुर्भाग्यवश जब उन्होंने अपने अन्तर की आवाज बोलनी चाही तो धर्म के ठेकेदारों ने उन्हें कष्ट दिए। न्यूटन अत्यधिक धार्मिक थे और उन्होंने बाईबल की टीका की। आइनस्टीन धर्म में गहरी रूचि रखते थे तथा धर्म पर व्याख्यान देते थे। कहने का अभिप्राय यही है कि धर्म मनुष्य को विशाल दृष्टि प्रदान करता है और जब यही दृष्टि इस ब्रह्माण्ड को देखती है तो वह बड़े-बड़े रहस्य प्रकट कर देती है।

प्रश्न – क्या मनुष्य के साथ सृष्टि की दूसरी चीजों की कोई समानता है ?

उत्तर – मनुष्य के अन्दर एक पत्थर की आत्मा भी है क्योंकि वह पत्थर की तरह सुषुप्ति की बेहोशी में जाकर समा जाता है। उसके अन्दर एक पौधे की आत्मा भी है क्योंकि वह और उसके अंग पौधे की तरह बढ़वार (वेजीटेट) करते हैं। इसके अन्दर एक पशु की आत्मा भी है क्योंकि वह अनेकों बार पशुओं की तरह व्यवहार करता है। उसके अन्दर पक्षी की आत्मा भी है क्योंकि वह पक्षी की तरह कल्पनाओं में आसमान में उड़ान भरता है। उसके अन्दर एक देवता की आत्मा भी है – क्योंकि वह अपनी आत्मा को देवतुल्य बना सकता है। चांद, सितारे और

सभी नक्षत्रों के अन्दर विद्यमान ऊर्जा भी मनुष्य के अन्दर विद्यमान है। मनुष्य के अन्दर अग्नि की गर्मी, पृथ्वी की गंध और जल की शीतलता भी मौजूद है। यह इसलिए है कि मनुष्य ने सृष्टि की इन सारी ऊर्जाओं को अपने अन्दर आत्मसात किया है। मनुष्य बनने की यात्रा इन सब ऊर्जा के मण्डलों को पार करने पर ही पूर्ण होती है। इसलिए मनुष्य सृष्टि की ऊर्जा के साथ पूर्ण रूप से या अंश रूप में समानता रखता है और जब मनुष्य स्वयं की आत्मा की साधना करता है तो वह हर तरह की ऊर्जा को अपने अन्दर देखता है और उसे हर स्तर की ऊर्जा का ज्ञान हो जाता है जिससे वह अपने चारों ओर के वातावरण व उसकी चीजों के प्रति प्रेमपूर्ण हो जाता है। साधना के दौरान व्यक्ति के अन्दर ही सूर्य, चांद, नक्षत्र और आकाशगंगाएं प्रकट होने लगते हैं और वह सारी सृष्टि को अपनी ही आत्मा की अभिव्यक्ति समझने लगता है।

प्रश्न - क्या अहयात्म, विज्ञान और संसार एक दूसरे से भिन्न हैं ?

उत्तर - पूरी सृष्टि में एक ही ऊर्जा अलग-अलग रूपों में अटखेलियां कर रही है। कहीं वह गहरी निद्रा में सुषुप्ति के अंधकार में सो रही है, कहीं वही स्वप्न बनकर तो कहीं जागृत अवस्था में आकर सृष्टि की रचना करती जा रही है। ये तीनों अवस्थाएं हर मनुष्य और हर कण के अंदर विद्यमान रहती हैं। सृष्टि की रचना और प्रलय के समय इसी ऊर्जा का इन्हीं तीन रूपों में केवल रूपान्तरण है, बदलाव है। ऊर्जा की यही तीन अवस्थाएं तीन गुणों (सत्त, रज, तम) को जन्म देती हैं जिनसे सारी प्रकृति का संचालन होता है। जागृत (स्थूल), स्वप्न (सूक्ष्म) और सुषुप्ति (कारण) की इन तीन अवस्थाओं का अनुभव हर व्यक्ति करता है। संसार, विज्ञान और अध्यात्म इन्हीं तीन अवस्थाओं की पैदायश हैं। जिस प्रकार ऊर्जा की ये तीन अवस्थाएं एक दूसरी की विरोधी होती हुई भी एक दूसरी की पूरक व सहायक हैं उसी प्रकार संसार, विज्ञान व अध्यात्म भी एक ही अस्तित्व की तीन तह हैं। इन तीन अवस्थाओं के कारण ही हर कण, हर मनुष्य और हर प्रणाली का अस्तित्व बना रहता है। इन तीनों में से यदि एक अवस्था भी न हो तो सृष्टि की उत्पत्ति, संचालन और प्रलय कुछ भी सम्भव नहीं है लेकिन धर्म और परमतत्व तक पहुंचने के लिए इन तीनों गुणों को पार करना आवश्यक है। यही बात श्री कृष्ण भगवद् गीता के माध्यम से अर्जुन को कहते हैं।

प्रश्न - क्या आत्मा, मन व शरीर अलग-अलग हैं ?

उत्तर – जिस प्रकार ऊर्जा तीन अवस्थाओं सुषुप्ति, स्वप्न और जागृत की पैदायश अध्यात्म, विज्ञान और संसार है उसी प्रकार इन्हीं तीन अवस्थाओं की पैदायश आत्मा, मन और शरीर है। सृष्टि की ऊर्जा की तीन अवस्थाओं की तरह आत्मा, मन और शरीर की ऊर्जा भी एक दूसरे की विरोधी होते हुए भी एक दूसरे की पूरक है। दूसरी तरह कहें तो शरीर मन से अलग नहीं है और मन आत्मा से भिन्न नहीं है। मन की स्थिरतम अवस्था ही आत्मा है। तन को मारो तो मन भी मरने लगेगा और फिर आत्मा भी नहीं रहेगी। तन की ऊर्जा ही मन की ऊर्जा बनती है और मन की अन्तरतम ऊर्जा ही आत्मा हैं तीनों का रूपान्तरण है। अत: तीनों में लयबद्धता जरूरी है। जब तक तीनों की ऊर्जा में लयबद्धता है तब तक पूर्ण तौर पर व्यक्ति स्वस्थ है। एक स्तर की बीमारी तीनों स्तर पर बेचैनी पैदा करती है। जिस प्रकार पत्ते व फूल की बीमारी बीज के स्वास्थ्य को प्रभावित करती है और बीज की कमजोरी पौधे के लिए खतरनाक है उसी प्रकार शरीर, मन और आत्मा का रिश्ता है। तीनों का स्वास्थ्य और विकास एक दूसरे पर निर्भर है।

प्रश्न – क्या शरीर की मृत्यु और ब्रह्माण्ड की प्रलय में कोई समानता है ?

उत्तर – इस ब्रह्माण्ड में जो भी है वह ऊर्जा है। ऊर्जा के बिना कोई भी स्थान और समय सम्भव नहीं है। छोटे से छोटा अनु भी ऊर्जा रूप है और बड़ी से बड़ी आकाशगंगा भी ऊर्जा रूप है। सृष्टि के हर अस्तित्व (छोटा या बड़ा) या प्रणाली द्धसिस्टमऋ के अन्दर की ऊर्जा में भी ऊर्जा के भिन्न-भिन्न स्तर विद्यमान हैं। उदाहरण के तौर पर अणु के अन्दर मध्य में एक उदासीन (न्यूट्रल) ऊर्जा का जोन (मण्डलऋ है, उस जोन के बाहर घनात्मक (पोजीटिव) और ऋणात्मक (निगेटिव) जोन हैं। ये तीनों ऊर्जा के जोन या स्तर यदि विद्यमान नहीं हैं तो सृष्टि की कोई भी रचना सम्भव नहीं है। ऊर्जा के ये तीन शक्ति केन्द्र मिलकर ही स्थूल, सूक्ष्म और कारण रचना का निर्माण करते हैं। आत्मा, मन और शरीर भी इन्हीं तीन शक्ति केन्द्रों की ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब किसी सिस्टम में केन्द्र की न्यूट्रल ऊर्जा का फैलाव बढ़ जाता है तो वह सिस्टम अपने केन्द्र में विलीन होने लग जाता है, यह उस सिस्टम की प्रलय है। इसी प्रकार जब इस ब्रह्माण्ड की ऊर्जा इसके केन्द्र की न्यूट्रल ऊर्जा में जाकर समा जाती है तो इस ब्रह्माण्ड की प्रलय हो जाती है। लेकिन जब रचना आरम्भ होती है तो यही केन्द्रीय ऊर्जा बाहर निकलकर बाहरमुखी हो जाती है। इसी से घनात्मक और ऋणात्मक जोन बन जाते है। केवल

ऊर्जा का रूपान्तरण द्धबदलावऋ है। जब ऊर्जा की बलूमिंग होती है तब यह बाहर की तरफ बहने लगती है और जब प्रलय होती है तब यह केन्द्र में जाकर सुषुप्ति (कारण ऊर्जा) के अंधकार में जाकर समा जाती है। यही व्यवहार इस शरीर में होता है। बढ़ती आयु के साथ जब केन्द्रीय (न्यूट्रल) ऊर्जा का दायरा बढ़ने लगता है तो मन, शरीर व इन्द्रियां अपनी शक्ति का केन्द्रीय ऊर्जा में समर्पण कर देते है जिसमें केन्द्रीय ऊर्जा का दायरा बढ़ता चला जाता है औरमन व इन्द्रियों की ऊर्जा का दायरा सीमित होता है चला जाता हे और एक समय पर शरीर की मृत्यु हो जाती है। यही कारण है कि बढ़ती आयु के साथ मन व शरीर की ताकत घटती चली जाती है, मन की स्मरण शक्ति कमजोर पड़ने लगती है और इन्द्रियां संकल्प हारने लगती हैं। इस ब्रह्माण्ड में भी जब ब्रह्माण्ड की सारी ऊर्जा केन्द्रीय आकाशगंगा के ब्लैक होल (कृष्ण विविर) में जाकर समा जाती है तो इसकी महाप्रलय हो जाती है और जब केन्द्र में समाई हुई यह ऊर्जा ताजगी धारण करके पुनः बाहर की तरफ दौड़ने लगती है। तो नई सृष्टि अस्तित्व में आने लगती है। अतः अस्तित्व चाहे छोटा है या बड़ा, उसके जन्म, उसकी स्थिति या प्रलय के दौरान ऊर्जा का व्यवहार एक जैसा ही होता है।

प्रश्न – क्या आत्मा, मन और शरीर की तरह परमात्मा भी ऊर्जा रूप या शक्ति केन्द्र है ?

उत्तर – इस शरीर में मुख्य तौर पर तीन ऊर्जा के जोन हैंय कारण, सूक्ष्म और स्थूल, इन तीनों की केन्द्रीय ऊर्जा आत्मा या सैल्फ कहलाती है। कारण, सूक्ष्म और स्थूल ऊर्जा से ही जीवात्मा, मन और शरीर का निर्माण होता है। इसी प्रकार इस ब्रह्माण्ड में स्थूल, सूक्ष्म और कारण मण्डल हैं, इन तीनों की केन्द्रीय ऊर्जा परमात्मा, खुदा या गौड कहलाती है। लेकिन यह केन्द्रीय मण्डल हमारी पहुंच में नहीं है, इसे केवल समाधि की अवस्था में अनुभव किया जा सकता है। जिस ऊर्जा के मण्डल में हम निवास करते हैं, यह ऊर्जा केन्द्रीय ऊर्जा से पूर्ण तौर पर भिन्न है। हम जागृति या स्वप्न में रहते हुए परमात्मा की ऊर्जा का अनुभव नहीं कर सकते हैं। परमात्मा की ऊर्जा का अनुभव आंशिक तौर पर सुषुप्ति की गहरी निद्रा में जाकर किया जा सकता है लेकिन वहां पर कोई होश नहीं है केवल अज्ञान और अंधकार है लेकिन आनंद है जहां जाकर हम सब कुछ भूल जाते हैं। इसके अतिरिक्त सुषुप्ति महा ऊर्जा का भण्डार है जहां जाकर व्यक्ति की या ब्रह्माण्ड की सारी थकान मिट जाती है और वह नए उत्साह के साथ जागृति में लौट आता है और ताजगी के साथ कार्य करने लगता है। लेकिन परमात्मा सुषुप्ति का अज्ञान और अंधकार नहीं हो सकता है। इसलिए सुषुप्ति के भी गर्भ में जब

व्यक्ति का प्रवेश होता है तब वह परमात्मा के महाप्रकाशवान मण्डल में प्रवेश करता है जहां सदा दिवाली रहती है और जो संतों का धाम होता है तथा जहां सदा वीणा की धुन और बीन का लहरा गूंजता रहता है। जब सुरत (आत्मा) इस मण्डल में प्रवेश करती है तो वह परम् दिव्यता को प्राप्त हो जाती है और परमात्मा का संगीत सुनती हुई महा आनंद के सागर में समाकर अमृतत्व को प्राप्त हो जाती है।

प्रश्न – कुण्डलीनी शक्ति के साथ परमात्मा का क्या संबंध है ?

उत्तर –हम स्थूल ऊर्जा के मध्य में बैठे हुए हैं। यहां रहते हुए हमारा परमात्मा के साथ मिलन नहीं हो सकता है। स्वयं परमात्मा नहीं बल्कि परमात्मा की शक्ति के साथ हमारा संबंध है। जिस प्रकार हमारा साक्षात संबंध सूर्य से नहीं बल्कि सूर्य की किरणों से है। यही किरणें पृथ्वी के सारे जीवन का आधार हैं। परमात्मा की जो शक्ति इस ब्रह्माण्ड को चलाती है उसे मनीषियों ने कुण्डलीनी शक्ति, परामाया, पराशक्ति या पराविद्या कहा है। राधास्वामी पंथ में यही राधा है जो सृष्टि की जननी माता है और सृष्टि के स्वामी के साथ उसकी शक्ति बनकर कार्य करती है। यही शक्ति कारण, सूक्ष्म और स्थूल मण्डलों को बींधकर हम तक चली आई है। इसलिए इसे ही पकड़कर जीवात्मा परमात्मा तक पहुंच सकती है। यदि इस शक्ति का साथ हमें मिल जाए तो फिर जीवात्मा सुषुप्ति के महाअंधकार और महाअज्ञान को भी चीरकर अपने स्वामी के चरणों में जाकर समा सकती है।

प्रश्न – परमात्मा तक हमारी पहुंच कैसे हो सकती है ?

उत्तर – इस शरीर और ब्रह्माण्ड में मुख्य तौर पर ऊर्जा के तीन मण्डल है, स्थूल, सूक्ष्म और कारण। ये तीन मण्डल अचेतन, चेतन और महाचेतन ऊर्जा के मण्डल हैं। हर मण्डल के अन्दर आगे छः और ऊर्जा के मण्डल हैं। छः मण्डल (चक्र) स्थूल ऊर्जा के, छः सूक्ष्म और छः कारण ऊर्जा के हैं। इन अठारह ऊर्जा के मण्डलों के केन्द्र स्वामी (परमात्मा) की शक्ति राधा के ऊपर विद्यमान हैं। यह शक्ति स्थूल मण्डल में स्थूल बनकर, सूक्ष्म में सूक्ष्म बनकर और कारण मण्डल में महाचेतन बनकर व्यवहार करती हैं। साधक का जेसा स्वभाव व रूचि होती है उसी के अनुसार यह साधक की सहायता करती है। हमारे स्थूल शरीर में छः चक्र हैं, इनमें सबसे ऊपर व श्रेष्ठ आज्ञा चक्र है जहां पर स्थिर होकर ध्यान किया जाता है और ऊपर की तरफ चढ़ाई की जाती है। हर मण्डल (चक्र) पर विद्यमान ऊर्जा गति में रहती हुई संगीतमय धुन हमेशा विद्यमान रहती है। आत्मा के सामने कितना भी अंधकार या कठिनाई आ जाए, शब्द-धुन हमेशा ही आत्मा को अपने आंचल में समेटकर सुरक्षित परमात्मा के

धाम में पहुंचा देती है। अतः राधास्वामी योग को सुरत-शब्द योग भी कहा जाता है। अलग-अलग चक्रों पर अलग-अलग शब्द-धुन प्रकट होती है जिसका भेद किसी शब्द-भेदी सतगुरू के पास जाकर ही लिया जा सकता है। स्वामी जी महाराज कहते हैं -

गुरू सोई जो शब्द स्नेही, शब्द बिना दूसर नहीं कोई।
शब्द कमावे सो गुरू पूरा, उन चरणन के हो जा धूरा।।

राधास्वामी।